The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 4 | Issue 3 | March 2026
ISSN: 2583-973X (Online), SJIF IF: 5.6
Website: www.theacademic.in

रेशमी रुमाल तहरीक और भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष का अन्तर्राष्ट्रीय आयाम

डॉ0 तनवीर हुसैन

गांधी फैज ए आम कॉलेज, शाहजहांपुर, उत्तर प्रदेश, ईमेल: tanveerpasha2013@gmail.com

DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.19543167

ARTICLE DETAILS

Research Paper

Accepted: 09-03-2026

Published: 10-04-2026

Keywords:

रेशमी रुमाल तहरीक, भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष, अंतरराष्ट्रीय आयाम, देवबंद आंदोलन, मुस्लिम नवचेतना, क्रांतिकारी गतिविधियाँ।

ABSTRACT

जब भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की चर्चा की जाती है, तो सामान्यतः हमारे मस्तिष्क में भारत की धरती पर संचालित स्वतंत्रता संग्राम की ही रूपरेखा उभरती है। किंतु यह दृष्टिकोण पूर्णतः समग्र नहीं है, क्योंकि भारत से बाहर रह रहे भारतीयों तथा क्रांतिकारियों ने भी स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए महत्वपूर्ण एवं संगठित प्रयास किए। इन प्रयासों ने न केवल ब्रिटिश शासन के विरुद्ध अंतरराष्ट्रीय स्तर पर जनमत तैयार किया, बल्कि भारत के भीतर चल रहे संघर्ष को भी वैचारिक, कूटनीतिक और नैतिक समर्थन प्रदान किया। इस प्रकार भारत की स्वतंत्रता केवल देशांतर्गत संघर्ष का परिणाम नहीं थी, बल्कि यह वैश्विक स्तर पर हुए सामूहिक और बहुआयामी प्रयासों का प्रतिफल थी। समय के साथ, इन अंतरराष्ट्रीय क्रांतिकारी प्रयासों को अपेक्षित महत्त्व नहीं दिया गया और मुख्यतः कांग्रेस के नेतृत्व में संचालित आंदोलनों को ही स्वतंत्रता संघर्ष का केंद्रीय आधार मान लिया गया। प्रस्तुत शोध-पत्र इसी उपेक्षित पक्ष को उजागर करने का प्रयास करता है, विशेषकर 'रेशमी रुमाल तहरीक' के माध्यम से, जो भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अंतरराष्ट्रीय आयाम की एक महत्वपूर्ण कड़ी थी। रेशमी रुमाल तहरीक का संबंध दारुल उलूम देवबंद से जुड़े क्रांतिकारी उलेमाओं के उस प्रयास से था, जिसमें उन्होंने विदेशों—विशेषतः अफगानिस्तान, तुर्की और जर्मनी—से संपर्क स्थापित कर ब्रिटिश शासन के विरुद्ध एक व्यापक विद्रोह की योजना बनाई। इस आंदोलन का नेतृत्व मौलाना महमूदुल हसन ने किया, जिन्हें 'शेख-उल-हिंद' के नाम से भी जाना जाता है। उनके प्रमुख सहयोगियों में उबैदुल्लाह सिंधी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिन्होंने विदेशों में रहकर इस आंदोलन को संगठित और सक्रिय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह तहरीक गुप्त पत्रों (रेशमी कपड़े पर लिखे संदेशों) के माध्यम से संचालित होती थी, जिनका उद्देश्य विदेशी शक्तियों के सहयोग से भारत में सशस्त्र क्रांति को प्रोत्साहित करना था। यद्यपि यह योजना अंततः सफल नहीं हो सकी और अंग्रेजों द्वारा इसका भंडाफोड़

कर दिया गया, फिर भी इसने भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष के अंतरराष्ट्रीय स्वरूप को स्पष्ट रूप से उजागर किया। भारतीय नवजागरण के संदर्भ में भी देवबंद आंदोलन और उससे उत्पन्न मुस्लिम नवचेतना को वह स्थान नहीं मिला, जिसका वह वास्तव में अधिकारी था। रेशमी रुमाल तहरीक न केवल एक क्रांतिकारी पहल थी, बल्कि यह उस व्यापक विचारधारा का प्रतीक भी थी, जिसमें भारत की स्वतंत्रता को एक वैश्विक राजनीतिक संदर्भ में देखा गया। अतः यह कहा जा सकता है कि रेशमी रुमाल तहरीक भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अंतरराष्ट्रीय आयाम का प्रारंभिक एवं महत्वपूर्ण बिंदु थी, जिसने आगे चलकर अन्य क्रांतिकारी प्रयासों के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

एक ओर भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में अलीगढ़ तहरीक और ख़िलाफ़त आंदोलन की चर्चा अधिक होती है और जाने-अनजाने अलीगढ़ तहरीक को ही भारतीय मुस्लिम चेतना साबित करने की कोशिशें होती हैं, जबकि अलीगढ़ तहरीक के समानांतर देवबंद तहरीक के रूप में राष्ट्रवादी चिंतन की शानदार परम्परा की बुनियाद पड़ रही थी। देवबंद की शानदार परम्परा इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि जहाँ एक तरफ इस तहरीक ने जमालुद्दीन अफ़गानी की क्रांतिकारी चेतना का विकास किया तो दूसरी तरफ अंग्रेजी - राज समर्थक सर सैयद अहमद खाँ की विचार-चेतना का कड़ा विरोध किया। इस दृष्टि से देवबंद तहरीक का महत्व अविस्मरणीय है। रेशमी रूमाल तहरीक देवबंद तहरीक का ही क्रांतिकारी विकास है, जिसमें देवबंद संदर्भित उलेमा - जिनमें प्रमुख थे - शेखुलहिंद मौलाना महमूद हसन और उनके शिष्य उबैदुल्लाह सिंधी। उनके ही प्रभाव से दारूल उलूम, फिरंगी महल और नदवतुल उलूम जैसी संस्थाओं का राजनीतिकरण हुआ। मौलाना उबैदुल्लाह सिंधी की पूरी जीवन-यात्रा स्वाधीनता आंदोलन और मुस्लिम नवोत्थान के लिहाज़ से नई विचार परम्परा का प्रस्थान बिन्दु है।

दूसरी ओर भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की जब बात चलती है तो हमारे मस्तिष्क में भारत भूमि पर हुए आज़ादी के संघर्ष का खाक़ा ही उभर कर आता है जबकि भारत से बाहर भी भारतीयों ने आज़ादी के संघर्ष को न केवल लगातार जारी रखा बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ज़ोर-शोर से प्रचारित और प्रसारित किया, जिसका लाभ हमें निश्चित ही मिला और भारत की आजादी इन्हीं सामूहिक प्रयत्नों का परिणाम थी, लेकिन कालान्तर में भारत की आज़ादी के इन क्रांतिकारी अन्तर्राष्ट्रीय प्रयासों को दरकिनार कर दिया गया। इसी कड़ी में देवबंद तहरीक और उसके क्रांतिकारी विशेषकर शेखुल हिन्द मौलाना महमूद हसन और उनके शागिर्द उबैदुल्लाह सिंधी के प्रयास सराहनीय हैं।

मौलाना उबैदुल्लाह सिंधी मार्च 1862 ई० में सियालकोट जिले में एक सिक्ख घराने में पैदा हुए।[1] एक दिन सत्य की खोज में निकले और सिंध पहुँचे और वहीं एक मुसलमान बुजुर्ग से प्रभावित होकर इस्लाम स्वीकार कर लिया।[2] अध्ययन के लिए वह देवबन्द पहुँचे और वहीं से अपनी शिक्षा पूर्ण की। वह शेखुल हिन्द मौलाना महमूद हसन के बड़े प्रिय शिष्य बन गए। शेखुल हिन्द के बुलावे पर वह दुबारा देवबन्द आए और उन्हें दारूल उलूम देवबन्द के पुराने छात्रों के संगठन 'जमीयत-ए-अंसार' का काम सौंपा गया।[3] इस दौरान उनकी लोकप्रियता बढ़ी और उन्होंने अपनी नेतृत्व क्षमता का भी परिचय दिया। प्रबन्ध समिति उनकी अंग्रेज दुश्मनी को दारूल उलूम के लिए हानिकारक समझती थी इसलिए वह देवबन्द से दिल्ली चले गए, यहाँ उन्होंने

'नज़ारत-उल-मुअरूफ' के नाम से एक मदरसे का निर्माण किया जिसके संरक्षक शेखुल हिन्द और मौलवी मुश्ताक़ हुसैन थे।[4] दिल्ली निवास के दौरान उनका गहरा सम्पर्क मौलाना मोहम्मद अली, हकीम अजमल खाँ और डॉ० अंसारी से हुआ।[5]

1914 ई० में अचानक छिड़े प्रथम विश्वयुद्ध ने भारतीय राष्ट्रीयता के प्रहरियों को झकझोरा, उन्हें उद्वेलित किया। इस समय यह धारणा प्रचलित थी कि ''ब्रिटेन पर किसी भी तरह का संकट भारत के हित में है, उसको लिए एक मौका है।'' इस मौके का कई जगहों पर, कई तरह से फायदा उठाया गया।[6] उत्तरी अमरीका में गदर क्रांतिकारियों ने सशस्त्र संघर्ष के माध्यम से अंग्रेजी हुकूमत को उखाड़ फेंकने का प्रयास किया, जबकि स्वदेशी संगठनों (विशेषकर लोकमान्य तिलक और एनी बेसेन्ट) ने स्वराज के लिए देशव्यापी आंदोलन छेड़ा।[7] इसी श्रृंखला में देवबन्द तहरीक ने क्रांतिकारी चेतना का विकास किया जिसे भारतीय इतिहास में रेशमी रूमाल तहरीक के नाम से जाना गया। इस क्रांतिकारी चेतना के कर्णधार थे शेखुल हिन्द मौलाना महमूद हसन और उनके शिष्य उबैदुल्लाह सिंधी।

ब्रिटेन के खिलाफ जब तुर्की ने युद्ध की घोषणा की तो भारत के आम मुसलमानों में ब्रिटिश विरोधी भावना बहुत बढ़ गई। देश के कोने-कोने से मुस्लिम युवक सरहद पार काबुल पहुँचने लगे। विश्वयुद्ध के दौरान अंग्रेजों के खिलाफ जेहाद आंदोलन के नेता उबैदुल्लाह सिंधी और उनके गुरु मौलाना महमूद हसन थे।[8] उबैदुल्लाह सिंधी ने युद्ध शुरू होने पर देश का भ्रमण किया और फिर क्वेटा तथा कंधार होकर काबुल की ओर चल पड़े। वह अक्टूबर 1915 ई० में काबुल जा पहुँचे, वहाँ उनकी मुलाकात भारत के अन्य क्रांतिकारियों से हुई। जहाँ यह नज़रबंद कर दिए गए। कुछ अन्य भारतीय क्रांतिकारी भी वहाँ कैद थे, जिन पर भारत में अंग्रेजी अदालत में मुकदमा चल रहा था। किन्तु इसी बीच राजा महेन्द्र प्रताप अपने मिशन के साथ काबुल आ पहुँचे थे। उनके अनुरोध पर ये सब रिहा कर दिए गए।[9] इस प्रकार काबुल में विश्व के विभिन्न भागों में फैले क्रांतिकारी एकत्रित होने लगे और काबुल अब भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन का केन्द्र बन गया था, हालांकि इससे पूर्व इन गतिविधियों का केन्द्र जर्मनी था लेकिन बदली हुई परिस्थितियों तथा शेखुल हिन्द एवं मौलाना उबैदुल्लाह के जनचेतना अभियान के परिणामस्वरूप अब काबुल नया केन्द्र था।

मौलाना उबैदुल्लाह के काबुल रवाना होने के कुछ दिन बाद ही देवबन्द के ही मौलवी मोहम्मद मियाँ अंसारी और कुछ अन्य लोगों के साथ शेखुल हिन्द मौलाना महमूद हसन अरब के हैदजाज के लिए रवाना हुए। वहीं उन्होंने हैदजाज के वली (तुर्की फौजी गवर्नर) गालिब पाशा से जेहाद की घोषणा हासिल की जो ग़ालिबनामा के नाम से मशहूर है।[10] मियाँ अंसारी इसे लेकर जनवरी 1916 ई० में वापस भारत आए। वह भारत और सरहद के कबीलाई अंचल में उसे बाँटते हुए काबुल पहुँचे। इस बीच काबुल में हिंदुस्तान की अस्थायी सरकार बन चुकी थी और मौलाना उबैदुल्लाह उसके गृहमंत्री, राष्ट्रपति राजा महेन्द्र प्रताप और बरकतुल्लाह प्रधानमंत्री बनाए गए।[11,12,13,14] देवबंद तहरीक की कोशिशों के अतिरिक्त बर्लिन में बसे कुछ भारतीय आंदोलनकारी जिनका सम्पर्क अमरीका में गदर क्रांतिकारी रामचंद्र से था, जर्मनी की मदद से विदेशों में तैनात भारतीय सैनिकों से सम्पर्क करने और उन्हें विद्रोह के लिए तैयार करने की कोशिश करने लगे।[15] इस प्रकार दिसम्बर 1915 ई० में अफगानिस्तान में बनी 'अस्थायी क्रांतिकारी सरकार' इससे पूर्व बनी बर्लिन की 'भारत सहायता समिति ' का नया संस्करण थी।

मौलाना उबैदुल्लाह, बरकतुल्लाह और राजा महेन्द्र प्रताप के प्रयत्नों से ही आज़ाद हिन्दुस्तान की सरकार की स्थापना हुई थी। काबुल में भारत जर्मन मिशन का आगमन और इस सरकार के बारे में खुद राजा महेन्द्र प्रताप ने अपनी जीवनी में लिखा

है ।[16] इस अस्थायी सरकार ने अफगान सरकार से सीधा सम्बन्ध कायम किया । दोनों के बीच संधि का एक मसौदा भी तैयार किया गया । अस्थायी सरकार ने कई मिशन बाहर भेजे और कई घोषणाएं निकालीं । उसने जर्मन चांसलर के पत्र, जो मिशन ने हासिल किए थे, भारत के राजाओं के पास भेज दिए और रूस के साथ भी समझौता करने की कोशिश की । रूस में बोल्शेविक क्रांति के बाद वहॉ की सरकार ने राजा महेन्द्र प्रताप को बुलावा भेजा और त्रोत्सकी, जोफे आदि से उनकी मुलाकात हुई। एक विशेष दूत जर्मन चांसलर का पत्र लेकर नेपाल के राजा के पास गया था किंतु वहीं भी कोई परिणाम नहीं निकला । राजा महेन्द्र प्रताप रूस से होकर 1918 ई० में बर्लिन पहुँचे और कैसर से मिले । अपनी सरकार की ओर से सुझाव दिया कि जर्मन, आस्ट्रियाई, बुल्गेरियाई, तुर्की और रूसी समाजवादियों को लेकर एक अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी सेना बनाई जाए । यह सेना आसानी से सोवियत संघ से होकर जा सकेगी और भारत को स्वतंत्र कराने में सहायक होगी । जर्मन सरकार ने यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। बाद में क्रांतिकारियों की गिरफ्तारियों और क्रांति की नाकामियों के बीच सम्भवतः अस्थायी सरकार समाप्त हो गयी ।[17]

दूसरी ओर अपनी उपलब्धियों से प्रोत्साहित होकर मौलाना सिंधी ने एक लम्बा खत शेखुल हिन्द को लिखा और अनुरोध किया कि वह तुर्की की सरकार और मक्का के शरीफ का सक्रिय सहयोग प्राप्त करें । इसमें 'अल्लाह की फौज' 'मुक्तिसेना' या 'मुस्लिम मुक्ति सेना' स्थापित करने की योजना पेश की गयी थी ।[18] कहा गया था इसका सदर दफ्तर मक्का में होगा और शेखुल हिन्द इस फौज के सेनापति होंगे। इस सेना का पूरा खाका पेश किया गया था और कहा गया था कि इसके छोटे दफ्तर कुस्तुंतुनिया, तेहरान और काबुल में होंगे ।[19] वस्तुतः यह सब इस्लामी देशों को ऐक्यबद्ध कर अंग्रेजों के खिलाफ लड़ने की योजना थी । इसके साथ और पत्र भी थे जिनमें काबुल की क्रांतिकारी घटनाओं का विवरण था। ये पत्र 9 जुलाई 1916 को लिखे गये थे। इन्हें भारत से होकर मौलाना महमूद हसन के पास गुप्त रूप से भेजा जा रहा था, किंतु अंग्रेजों के हाथ लग गए और योजना असफल हो गई । अंग्रेजों के सौभाग्य से मक्का के शरीफ ने तुर्की के खिलाफ बगावत का झंडा उठाया और अंग्रेजों ने उसका समर्थन किया । उसके विद्रोह से तुर्की और भारत के बीच का सीधा सम्पर्क खत्म हो गया । शेखुल हिंद अपने चार साथियों के साथ मक्का में दिसम्बर 1916 में गिरफ्तार कर लिए गए और अंग्रेजों को सौंप दिए गए ।[20] गालिब पाशा युद्धबंदी बना लिए गए। तुर्की का पलड़ा हल्का और अंग्रेजों का पलड़ा भारी होते देख अफगान के अमीर ने भी कार्यवाही की । मौलाना उबैदुल्लाह की सहायता करने वाले काबुल की बड़ी अदालत के बड़े काज़ी मौलवी अब्दुल रज़्ज़ाक को गिरफ्तार कर लिया गया । भारत में भी ब्रिटिश हुकूमत ने कार्यवाही की । जिन लोगों को मुसलमानों की भावनाओं को अंग्रेजों के खिलाफ भड़काने के अभियोग में नज़रबंद किया गया उनमें थे मोहम्मद अली, शौकत अली, अबुल कलाम आज़ाद और ज़फर अली खाँ । अबुल कलाम आजाद पर इल्ज़ाम लगाया गया था कि वह भारत और अफगानिस्तान के अन्य षड्यंत्रकारियों से खतों किताबत करते थे और मौलाना उबैदुल्लाह ने उन्हें काबुल आने के लिए कई बार निमंत्रित किया था ।

मौलाना उबैदुल्लाह रूस चले गए और वहाँ वह कम्यूनिस्ट नेताओं से मिले । उन्होंने रूसी क्रांति की सराहना की 1923 ई० में तुर्की आए और 3 वर्ष रहे जहाँ खिलाफत समाप्त हो चुकी थी । यहाँ से वह अरब चले गए जहाँ 10-12 वर्ष तक निवास किया और इस अवधि में राजनीतिक गतिविधियों से दूर रहे, पूरा समय अध्ययन व अध्यापन में गुज़ारा । इसी समय उन्होंने अपने विचारों को क्रमबद्ध किया । जब 1939 में कांग्रेस की कोशिशों से 24 वर्ष बाद उन्हें भारत वापसी का मौका मिला तो उन्होंने भारत सरकार की तमाम शर्तें मान लीं, जिनको माने बगैर उनका हिन्दुस्तान आना कठिन था । वह इसलिए वापस आए कि पूरे

देश के समक्ष अपने अनुभवों और विचारों को रख सकें। यहाँ पहुँचते ही उन्होंने अपने विचारों का प्रकाशन आरम्भकर दिया और इन्हें फैलाने के लिए अंतिम समय तक प्रयास करते रहे। 1944 ई० में उन्होंने इस दुनिया को अलविदा कहा। [21]

15 अगस्त 1947 ई० की रात दारूल उलूम देवबंद के कुलपति मौलाना ननौत्वी ने भाषण दिया, ‘‘आज का शुभ दिन भारत के इतिहास में हमेशा स्मरणीय रहेगा। अंग्रेजों की एक ऐसी शानदार और ताकतवर सल्तनत थी, जिनके बारे में माना जाता था कि उस पर सूरज कभी नहीं डूबता था और जिसके बारे में, इस सल्तनत के मगरूर प्रतिनिधि ग्लैडस्टोन ने संसद में दंभपूर्वक शेखी बघारी थी कि उनकी सल्तनत उस समय इतनी शक्तिशाली थी कि उस पर खुद आसमान भी गिरना चाहे तो वे अपनी संगीनों की नोकों पर उसे थाम लेंगे और वह सल्तनत को कोई नुकसान नहीं पहुंचा पाएगा। वही सल्तनत आसमान गिरने से नहीं बल्कि जमीन के कुछ जर्रों में जुम्बिश आ जाने के कारण इतनी आसानी से अपना बोरिया बिस्तर समेट रही है कि इतिहास में उसकी कोई मिसाल ही नहीं मिलती।’’[22] अंग्रेजी हुकूमत की ज़मीन में जुम्बिश लाने का काम मौलाना उबैदुल्लाह ने बखूबी किया।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय क्रांतिकारियों ने अंग्रेजी हुकूमत को उखाड़ने के लिए संगठित प्रयास किए और अपने इन कूटनीतिक एवं वैचारिक प्रयत्नों के माध्यम से 1857 के बाद एक बार फिर क्रांति की मशाल को प्रज्जवलित किया। परिणाम इस बार भी वही हुआ जो 1857 में हुआ था, लेकिन इस बार न केवल राष्ट्रीय स्तर पर वरन् अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी बिखरे भारतीय राष्ट्रवाद की कड़ियों को जोड़ने के प्रयत्न किए गए जिसमें रेशमी रूमाल तहरीक और उबैदुल्लाह सिंधी की भूमिका अविस्मरणीय है। इसी संगठित राष्ट्रवाद ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में ऊर्जा एकत्रित कर अनेक रूपों में शक्ति अर्जित की एवं देशव्यापी जनविद्रोह का रूप लिया।

संदर्भ :-

1. किदवई, मोहम्मद हासिम, जदीद हिन्दुस्तान के सियासी और समाजी अफ़कार, तरक्की उर्दू ब्यूरो, नई दिल्ली 1985, पृ. 427

2. वही

3. वही

4. वही

5. वहीं, पृ. 428

6. चन्द्र, विपिन, भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्यय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ. 104

7. वही

8. सिंह, अयोध्या, भारत का मुक्ति संग्राम, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 2003. पू. 307

9. वही

10. वही

11. वही

12. नंबूदिरिपाद, ई.एम.एस., भारत का स्वाधीनता संग्राम, अनुवादक आनंदस्वरूप वर्मा, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 2004, पृ. 160

13. सिंह, अयोध्या, हिन्दुस्तान का स्वाधीनता आंदोलन और कम्युनिस्ट, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली, पृ. 14

14. चन्द्र, विपिन, भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, पृ. 111

15. वही

16. प्रताप, महेन्द्र, माइ लाइफ स्टोरी ऑफ फिफ्टी इयर्स, दिल्ली, 1947.

17. मजुमदार, रमेशचंद्र, हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया, भाग-2, पृ. 405-7, भूपेंद्रदत्त, अप्रकाशित राजनीतिक इतिहास (बंगला, 1953). पू. 72-80

18. सिंह, अयोध्या, भारत का मुक्ति संग्राम, पू. 308

19. वही

20. वही

21. किदवई, मोहम्मद हासिम, पू. 429.

22. शौरी, अरुण, फतवे उलेमा और उनकी दुनिया, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 250